एम.ए. हिन्दी- सेम- 1 यूनिट-1 डॉ. करसन रावत

हिन्दी साहित्य का इतिहास लेखन की परंपरा का विकास ।

मध्यकाल में रचित वार्ता साहित्य -

(1) 84 वैष्णव की वार्ता (गोकुल नाथ)

(2) दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता (गोकुल नाथ) भक्तमाल - नाभादास

- हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन का वास्तविक सूत्रपात 19वीं शताब्दी से माना जाता है।

(1) गार्सा द तासी:-

- ग्रन्थ - इस्तवार द ला लितरेत्यूर एदूस्तानी

- इस ग्रंथ का प्रकाशन दो भागों में हुआ

1. 1839 इ. 2. 1847 ई.

- इसे हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास ग्रंथ माना जाता है। भाषा - फ्रेंच

(2) शिवसिंह सेंगर:-

- रचना - शिवसिंह सरोज (500 कवियों का परिचय) (1883 में लिखा)

(3) सर जार्ज गिर्यसन:-

- रचना - द मॉडर्न वर्नक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान (1888)

- इसका प्रकाशन एशियाटिक सोसाइटी आॅफ बगांल की पत्रिका के विशेषांक के रूप में हुआ।

- किशोरी लाल गुप्त ने इसे सही अर्थों में हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास माना है।

- इस ग्रथ मे पहली बार रचनाकारो को कालक्रम से वर्गीकृत किया गया।

- इन्होंने केवल हिन्दी के कवियों को अपने कालक्रम में स्थान दिया।

- हिन्दी साहित्य के इतिहास को ग्रियसन ने अपने ग्रंथ में भक्तिकाल

को प्रथमबार स्वर्णयुग काल की संज्ञा दी।

(4) मिश्र बंधु:-

- मिश्र बंधु विनोद (पुस्तक)

- इस ग्रथ की रचना 4 भागो मे हुई प्रथम 3 भाग - 1913 इ. में प्रकाशित हुये तथा चौथा भाग - 1934 ईस्वी मे प्रकाशित हुआ।

- इन्होंने पहली बार काल विभाजन का समुचित प्रयास किया।

(5) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल:- (100 कवियों का परिचय)

- ''हिन्दी साहित्य का इतिहास'' नामक ग्रंथ 1929 ई. मे हिन्दी शब्द सागर की भूमिका के रूप में लिखा।

- इन्होने युगीन परिस्थितियो के सदंर्भ मे साहित्यिक प्रवृतियों के विकास की बात कही।

(6) डॉ. रामकुमार वर्मा:-

- ''हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (1938)

- इनका प्रमुख आधार आचार्य शुक्ल का इतिहास रहा

- इन्होंने भक्तिकाल तक ही विवेचन किया

- इन्होंने स्वयभूं को हिन्दी साहित्य का प्रथम कवि माना

(7) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी:-

(1) हिन्दी साहित्य की भूमिका (1940 इ.)

(2) हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास (1953 इ.)

(3) हिन्दी साहित्य का आदिकाल (1952 इ.)

(8) डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त:-

- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - (1965)

काल विभाजन

गार्सा द तासी एवं शिवसिंह सेंगर ने काल विभाजन का कोई प्रयास नहीं किया। ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक ''द मार्डन वर्नेक्यूलर लिटरेचर आॅफ हिन्दुस्तान'' में रचनाकारों का काल क्रमानुसार वर्गीकरण करते हुए 11 काल खण्डों में विभाजित किया

प्रथम काल - चारण काल (700-140र्0 इ.)

मिश्र बंधु

(1) आरम्भिक काल - 700-1400 ई.

(2) माध्यमिक काल - 1445-1680 वि.स.

(3) अलंकृत काल - 1680-1889 वि.स.

(4) परिवर्तन काल - 1890-1925 वि.स.

(6) वर्तमान - 1926 से वर्तमान तक

-

काल खण्डों के विभाजन में नामकरण एक जैसी पद्धति पर नही

- हिन्दी साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ 700 वि.स. से मानकर अपभ्रंष साहित्य को स्थान दिया।

(1) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -

(2) वीरगाथा काल - संवत् 1050-1375 वि.स.

(3) भक्तिकाल/पूर्व मध्यकाल - 1375-1700 वि.स.

(4) रीतिकाल/उतरमध्यकाल - 1700-1900 वि.स.

(5) आधुनिक काल/गद्यकाल - 1900-1984 वि.स.

- शुक्ल जी ने प्रधान प्रवृति एंव प्रसिद्ध ग्रन्थों की प्रसिद्धी को आधार मानकर काल विभाजन किया।

- इन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास ‘‘विक्षेपवादी’’ प्रवृति पर लिखा

- इनके काल विभाजन में सर्वाधिक विवाद वीरगाथा काल पर हुआ

(2) डाॅ. रामकुमार वर्मा -

(1) संधिकाल - 750 वि.-1000 वि.

(2) चारणकाल - 1000 वि.-1375 वि.

(3) भक्तिकाल - 1375 वि.-1700 वि.

(4) रीतिकाल - 1700 वि.-1900 वि.

(5) आधुनिक काल - 1900 वि.-वर्तमान

(6) डा़ॅ. गणपतिचन्द्र गुप्त -

(

प्) प्रारम्भिक काल - 1184-1350 इ.

(प्प्) मध्यपूर्वकाल - 1350-1500 इ.

(प्प्प्) उतरमध्य काल - 1500-185र7 इ.

(प्ट) आधुनिक काल - 1857-1965 इ.

19 वीं सदी में जन्में प्रमुख
साहित्यकार (जन्म के क्रम पर आधारित) निम्न हैं -

==========*==*=====

1. 1815-1881 - सेवक
2. 1826-1896 - राज लक्ष्मण सिंह
3. 1844-1914 - बालकृष्ण भट्ट
4. 1845-1884 - सरदार
5. 1850-1911 - सुधाकर द्विवेदी
6. 1850-1885 - भारतेंदु हरिश्चन्द्र
7. 1851-1887 - लाला श्रीनिवास दास
8. 1855-1923 - बदरीनारायण चौधरी ' प्रेमघन '
9. 1856-1894 - प्रतापनारायण मिश्र
10. 1857-1899 - ठाकुर जगमोहन सिंह
11. 1858-1900 - अम्बिकादत्त व्यास
12. 1858-1937 - नाथूराम शर्मा " शंकर "
13. 1859-1906 - रामकृष्ण वर्मा
14. 1859-1915 - सत्यनारायण कविरत्न
15. 1859-1925 - राधाचरण गोस्वामी
16. 1859-1929 - श्रीधर पाठक
17. 1864-1938 - महावीरप्रसाद द्विवेदी
18. 1865-1907 - बालमुकुन्द गुप्त
19. 1865-1947 - अयोध्यासिंह उपाध्याय ' हरिऔध '
20. 1866-1930 - लाला भगवानदीन

21. 1866-1932 - जगन्नाथ रत्नाकर
22. 1872-1943- रामचरित उपाध्याय
23. 1875-1945 - श्यामसुन्दरदास
24. 1880-1936 - मुंशी प्रेमचन्द
25. 1881-1939 - सरदार पूर्ण सिंह
26. 1883-1922 - चन्द्रधर शर्मा ' गुलेरी '
27. 1884-1940 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
28. 1885-1968 - बेढब बनारसी
29. 1886-1964 - मैथिलीशरण गुप्त
30. 1888-1963 - बाबू गुलाबराय
31. 1888-1968 - माखनलाल चतुर्वेदी
32. 1889-1937 - जयशंकर प्रसाद
33. 1895-1963 - सियारामशरण गुप्त
34. 1896- 1988 - वियोगी हरि
35. 1896-1963 - सूर्यकांत त्रिपाठी ' निराला '
36. 1896-1967 - सुदर्शन
37. 1896-1974 - सेठ गोविन्ददास
38. 1897-1960 - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन '
39. 1898-1966 - उदयशंकर भट्ट
40. 1900-1977 - सुमित्रानंदन पन्त

हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक

. भारतेंदु हरिश्चंद को ही इस विधा का जनक माना जाता है. उन्होंने नाटक नामक एक दीर्घ निबंध लिख कर इसकी शुरुआत की. हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक निम्नलिखित हैं –

१. भारतेंदु हरिश्चंद – भारतेंदु हरिश्चंद को इस विधा का जनक माना जाता है. उन्होंने नाटक नामक एक लम्बा निबंध लिख कर सैद्धांतिक समीक्षा का श्री गणेश

किया. इस निबंध में भारतेंदु ने उन सिद्धांतों की बात की है, जिसके आधार पर समीक्षा की जा सकती है.

२. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी – आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने द्वारा सम्पादित साहित्यिक पत्रिका सरस्वती के साथ हिंदी आलोचना के नए युग का आरम्भ किया. आपके द्वारा रचित कालिदास की निरंकुशता, नैषध चरित्र चर्चा, विक्रमांक चरित चर्चा हिंदी आलोचना के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं.

३. पं. बालकृष्ण भट्ट – हिंदी की प्रमुख पत्रिका हिंदी प्रदीप के सम्पादक पं बालकृष्ण ने इसी पत्रिका में लाला श्रीनिवास दास द्वारा लिखित नाटक संयोगिता स्वयंवर की आलोचना लिख कर भारतेंदु हरिश्चंद के कार्य को आगे बढाया. यह भी एक नाटक था. अपनी इस आलोचना में उन्होंने जहाँ एक ओर भारतेंदु द्वारा स्थापित मापदंडो को अपनी आलोचना का आधार बनाया. वहीँ दूसरी ओर कुछ नए सिद्धांत भी निर्मित किये.

४. मिश्र बन्धु – मिश्र बंधुओं ने तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश किया. उन्होंने हिंदी के नव कवियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, साहित्यिक मापदंडों पर उनकी रचनाओं को कसा. उन्होंने हिंदी नव रत्न की रचना की. इस ग्रन्थ में उन्होंने देव को हिंदी साहित्य का सबसे बड़ा कवि घोषित किया.

५. पद्मसिंह शर्मा – हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक पद्मसिंह शर्मा मिश्र बंधु से सहमत नहीं थे. उन्होंने बिहारी की रचनाओं का बड़ा ही सूक्ष्म विश्लेषण किया. उनका यह ग्रन्थ बिहारी सतसई की भूमिका के नाम से प्रसिद्ध हुआ. इस मिश्र बंधुओं को प्रत्युत्तर भी माना जाता है.

६. श्यामसुंदर दास – हिंदी साहित्य की समालोचना के क्षेत्र में बाबू श्यामसुंदर दास का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है. आपने कई आलोचनात्मक ग्रन्थ लिख कर आलोचना को एक मुकम्मल स्थान पर पहुंचा दिया. आप द्वारा रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं – साहित्यालोचन, भाषा रहस्य, हिंदी साहित्य. आपने इन ग्रंथों में आलोचना के कई नए और वैज्ञानिक सिद्धांत गढ़े गये.

७. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य में आलोचना विधा को सर्वमान्य और सर्वोच्च स्थान पर पहुचाने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल हो ही है. आपने अपने लेखों और ग्रंथों में आलोचना के कई प्रमाणिक सिद्धांतों की रचना की. हिंदी साहित्य का इतिहास लिख कर इतिहास लेखन की नयी पद्धति इजाद की. इसके आलावा सूरदास, रस मीमांसा, त्रिवेणी में आपने नये सिद्धांत प्रतिपादित किये.

८. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक माने जाते हैं. आपने ऐतिहासिक आलोचना का सूत्रपात किया. आप द्वारा लिखित हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य का आदिकाल, हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास आदि आलोचना के अपरिहार्य ग्रन्थ हैं.

९. डॉ. नगेंद्र – डॉ. नगेन्द्र ने अपनी समीक्षा में भारतीय और पाश्चात्य समीक्षा का समन्वय करने का प्रयास किया. शुरूआती दौर में आप पर पाश्चात्य आलोचकों का भूत सवार था. लेकिन जैसे-जैसे आपने हिंदी ग्रंथों और आलोचना ग्रंथों का अध्ययन करना शुरू किया, आपका वह भूत उतर गया. इसके बाद आपने जो आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखे. जिसमें साकेत एक अध्ययन, सुमित्रानंदन पन्त, आधुनिक हिंदी का नाटक, आधुनिक हिंदी कविता की प्रवृत्तियां, भारतीय साहित्य शास्त्र की भूमिका, रस सिद्धांत प्रमुख हैं.

१०.बाबू गुलाबराय – आपने भी हिंदी साहित्य में सैद्धांतिक आलोचना पर काम किया. आप द्वारा रचित सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, हिंदी नाट्य विमर्श आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं

.

११.डॉ. राम विलास शर्मा – डॉ. राम विलास शर्मा ने आलोचना को नई दृष्टि से देखा. उनकी दृष्टि प्रगतिवादी रही. इस समय तक हिंदी साहित्य में प्रगतिशील ग्रंथों की रचना हो रही थी. उनको नियंत्रित करने में डॉ. राम विलास शर्मा के आलोचनात्मक ग्रंथों ने बड़ी मदद की. उनके प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थ इस प्रकार हैं – प्रगति और परंपरा, प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें, निराला की साहित्य साधना, निराला आदि.

१२.रामस्वरूप चतुर्वेदी – हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक और साहित्यकार रामस्वरूप चतुर्वेदी ने नव लेखन को लेकर अपनी आलोचना ग्रन्थ लिखे. अपने इस आलोचनात्मक ग्रन्थ को उन्होंने नवलेखन नाम भी दिया. इस तरह से जो नव लेखन बेढंगा होता जा रहा था, उसे एक दिशा मिली.

१३.धर्मवीर भारती – हिंदी साहित्य के प्रख्यात साहित्यकार और आलोचक धर्मवीर भारती साहित्य में मानवीय मूल्यों के जबरदस्त हिमायती थे, उन्होंने देखा कि हिंदी में मानव मूल्य धीरे-धीरे गौण होता जा रहा है. जो भविष्य के लिए उचित नहीं है, इसी कारण उन्होंने मानव मूल्य और साहित्य नामक प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थ लिख कर साहित्य को एक सम्यक दिशा दी.

१४.डॉ. नामवर सिंह – डॉ. नामवर सिंह ने हिंदी आलोचना को नई दिशा दी. आपने कविता के नए प्रतिमान लिख कर कविता को एक दिशा देने की कोशिश की.

इसके आलावा हिंदी साहित्य में कई ऐसे आलोचक हुए, जिनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है. जिनमें सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, डॉ. फ़तेह सिंह, प्रेमघन, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, अम्बिकादत्त व्यास, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. कृष्णलाल, डॉ. केसरी नारायण शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. विनय मोहन शर्मा, डॉ. हरवंशलाल शर्मा, इलाचंद्र जोशी, शिवदान सिंह चौहान, अमृतराय, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, डॉ. विजयपाल सिंह, डॉ. सत्येन्द्र, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय आदि.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

'इतिहास' और 'साहित्य का इतिहास' दोनों एक दूसरे से किंचित भिन्न हैं। इतिहास वह है जिसका साक्ष्य प्राप्त है और साहित्य का इतिहास वह है जिसमें समसामयिक वास्तविकता को ढूँढा जाता है। इतिहास जहाँ अतीत से सम्बंधित होता है वहीं साहित्य का इतिहास अतीत और वर्तमान दोनों की चेतना से सम्बंधित होता है क्योंकि अतीत को समझने के लिए वर्तमान की गहरी समझ जरूरी है। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' में लिखा है- "साहित्य के इतिहास लेखन के लिए वर्तमान समाज और साहित्य के वास्तविक स्वरूप का बोध आवश्यक है अन्यथा इतिहास लेखन के नाम पर अतीत के लिए अतीत की साधना होगी। वर्तमान से विच्छिन्न इतिहास बोध अतीत और वर्तमान दोनों को समझने में असमर्थ होगा, वर्तमान की चेतना से शून्य इतिहास लेखन केवल पुरातात्विक लेखन होगा।"[1]साहित्येतिहास में रचनाओं का मूल्यांकन, परम्परा का विवेचन और युग की सामाजिक सांस्कृतिक चेतना की खोज होती है, क्योंकि रचना का अस्तित्व इतिहास के भीतर होता है, बाहर नहीं। रचना के सृजन में इतिहास की सक्रिय भूमिका होती है। एक तरह से साहित्य के इतिहास में हम प्राकृतिक घटनाओं और मानवीय क्रियाकलापों के स्थानों पर साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से करते है। इसके बिना साहित्य की क्रांतिकारी भूमिका को समझना कठिन हो जाता है। साहित्य के इतिहास का प्रयोजन है साहित्य की प्रगति और परंपरा के विकास की पहचान कराना है। इसलिए कहा जाता है, साहित्य के इतिहास के अध्ययन के लिए इतिहास-दृष्टि की आवश्यकता होती है एवं इतिहास-दृष्टि के बिना साहित्य का इतिहास अधूरा हो जाता है। अंततः यही कह सकते हैं कि साहित्य का इतिहास समाज के इतिहास से जुड़ा है। यह दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व अधूरा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' 1929 ई. में प्रकाशित हुआ है। इस इतिहास के सामने आने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य का पहली बार प्रमाणिक रूप से विवेचन भी दृष्टिगोचर होता है। कुल मिलाकर यह कहा जा

सकता है कि शुक्ल जी के इतिहास में काल-विभाजन, कवियों का मूल्यांकन और हर युग की प्रमुख प्रवृत्तियों का वर्णन है। इस इतिहास में शुक्ल जी इतिहासकार के साथ-साथ एक आलोचक की भी भूमिका निभाते हैं। कहना न होगा कि आलोचक की भूमिका के रूप में वे ज्यादा प्रखर नजर आते हैं। आलोचकीय भूमिका को भारतीय समीक्षा-सिद्धांतों के आधार पर ही देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए- 'कोई रचना सूक्ति है या काव्य ? यदि काव्य है तो मुक्तक है या प्रबंध ? यदि प्रबंध है तो कथा की धारा टूटी है या नहीं ? कवि मार्मिक स्थलों को पहचानने में समर्थ हुआ है या नहीं ? उसमें कहाँ तक नाद सौन्दर्य है ? भाषा प्रौढ़ और प्रसंगानुकूल है या नहीं ? कवि कहाँ तक राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित है या उसने इन परिस्थितियों को कहाँ तक प्रभावित किया है ? कवि ने अपनी सामग्री कहाँ से ली है और कहाँ तक उसमें मौलिकता के गुण विद्यमान है ? जनता के ह्रदय में कवि ने कहाँ तक घर किया है ?' इन सारे तथ्यों के आधार पर ही शुक्ल जी के इतिहास का मूल्यांकन संभव है।

हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में आ. शुक्ल का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। उन्होंने इतिहास लेखन के जो मानदंड खड़े किए हैं, उनसे टकराए बिना आगे बढ़ पाना असंभव है। हिंदी साहित्येतिहास लेखन में आ.शुक्ल जी ऐसे प्रवेश द्वार हैं जिनसे होकर ही हम किसी नवीनतम कक्ष में पहुँच सकते हैं। उनका इतिहास ग्रंथ एक ऐसा दस्तावेज है जिसको आज भी आधार ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जाता है। यहाँ गौरतलब है कि, उनका यह इतिहास-ग्रंथ वह संक्षिप्त नोट है जिसे उन्होंने छात्रों के उपयोग के लिए तैयार किया था। इससे उनके कौशल का पता लगाया जा सकता है। आ. शुक्ल एक इतिहासकार से पहले कवि और समीक्षक थे इसलिए उनके इतिहास लेखन में आलोचनात्मक दृष्टि का पता साफ चल जाता है। उन्होंने अपने इतिहास को बड़े व्यवस्थित रूप से तैयार किया है जिसके कारण यह इतिहास ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ। कुछ आलोचक ये मानते हैं कि शुक्ल जी ने अपने इतिहास ग्रंथ में विधेयवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। किंतु मैनेजर पाण्डेय इसके पक्ष में नहीं हैं। शुक्ल जी को किसी भी वाद में बांधना उनके मौलिक लेखन

के प्रति अन्याय है। शुक्ल जी के इतिहास लेखन की अनेक विशेषताएँ हैं जो कुछ इस प्रकार हैं –

1. 1. काल-विभाजन और नामकरण
2. 2. जनता की चित्तवृत्ति
3. 3. भक्तिकाल का उदय
4. 4. रीतिकाल की भर्त्सना
5. 5. भारतेंदु का योगदान
6. 6. द्विवेदी युग
7. 7. छायावाद में रहस्यवाद का पुट
8. 8. भाषा आदि।
9. **1. काल-विभाजन और नामकरण :-**

आ. शुक्लजी के काल विभाजन के संबंध में विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि काल विभाजन के समय उनके समक्ष सामग्री बहुत कम थी और एक निश्चित समय के भीतर उन्हें अपना ग्रंथ पूरा करना था। किंतु इसके बावजूद उन्होंने अपने नैतिक दृष्टि-कोण से काल-विभाजन किया और उसके अनुसार इतिहास में काल-विभाजन के दो आधार बनाए। पहले में कालक्रमानुसार का ध्यान रखा और दूसरे में साहित्यिक प्रवृत्तियों की प्रधानता की बात की। उन्हीं के शब्दों में- "सारे रचना काल को केवल आदि, मध्य, पूर्व, उत्तर इत्यादि खंडों में आँख मूँद कर बाँट देना- यह भी न देखना कि खंड के भीतर क्या आता है, क्या नहीं, किसी वृत्त-संग्रह को इतिहास नहीं बना सकता।"[2] कालक्रम के अनुसार हिंदी साहित्य के इतिहास को पूर्व-मध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक-काल में बाँटा और प्रवृत्ति के आधार पर वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और गद्यकाल नाम दिया। उन्होंने हिंदी साहित्य के 900 वर्षों के इतिहास को चार कालों में विभक्त कर नामकरण किया जो इस प्रकार है :-

अ. आदिकाल (वीरगाथा काल, संवत् 1050- 1375 वि.)

आ. पूर्व-मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् 1375- 1700 वि.)

इ. उत्तर-मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् 1700-1900 वि.)

ई. आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् 1900- 1984 वि.)

अ. वीरगाथा काल

आ. शुक्ल ने आदिकाल को मुख्यत: वीरगाथा काल कहा है और जिसकी समय सीमा संवत् 1050 से 1375 तक मानी है। इसके नामकरण के लिए उन्होंने बारह पुस्तकों को चुना। इन बारह में से उनके अनुसार तीन को छोड़कर शेष सभी वीरगाथात्मक हैं। प्रवृत्ति को आधार मानकर उन्होंने जो वीरगाथा काल नामकरण किया बाद में चलकर वह विवाद के घेरे में आया। परवर्ती अनुसंधान से पता चला कि उन्होंने जिन ग्रंथों के सहारे प्रवृत्ति का निर्धारण किया उसमें अधिकांश रचनाएँ उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार जिस पद्धत्ति के सहारे उन्होंने आदिकाल को वीरगाथा काल कहा वह परवर्त्ती आलोचकों ने स्वीकार नहीं किया। सामग्री के अप्रमाणिक और अर्द्धप्रमाणिक होने पर उनका पहला नामकरण विवादास्पद रहा।

आ. भक्तिकाल

भक्तिकाल (संवत् 1375 से 1700) को उन्होंने पूर्व-मध्यकाल कहा। उनके इतिहास का केंद्र बिंदु भक्तिकाल ही रहा है जिसके चलते उन्होंने इतिहास में अपना वजूद कायम किया। उन्होंने भक्तिकाल को निर्गुण और सगुण दो शाखाओं में विभक्त किया। निर्गुण शाखा को पुन: दो काव्य धाराओं- ज्ञानाश्रयी और प्रेममार्गी शाखा में विभक्त किया एवं सगुण को रामकाव्य और कृष्णकाव्य में विभक्त किया।

हम सभी जानते हैं कि इतिहास लिखने से पहले उन्होंने 'गोस्वामी तुलसीदास'(1923), 'जायसी ग्रंथावली की भूमिका' (1924), और 'भ्रमरगीत सार की भूमिका' (1925) लिख चुके थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'भक्ति का विकास' नामक दार्शनिक निबंध भी लिखा था जिसमें उन्होंने भारतीय भक्ति का ऐतिहासिक

विकास दिखलाया है। इनकी चर्चा इसलिए आवश्यक है कि, उन्होंने भक्तिकाल का नामकरण भक्ति भाव से नहीं रखा बल्कि लोकमंगल की साधना के लिए रखा। भक्तिकाल के केंद्र में उन्होंने सामान्य मनुष्य को रखा जिसे वे 'लोक' की संज्ञा देते हैं। उन्होंने भक्तिकाल में भक्ति और लोक का सामंजस्य करना चाहा। वे भक्तिकाल की उत्पत्ति के लिए परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए कहा- "देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरूषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी-सी छाई रही। अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"[3] सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संकट से घिरे लोगों में निराशा और वैराग्य का भाव उत्पन्न होने के कारण सामान्य जन भक्ति की ओर मुड़े ऐसा उनका कहना था। शुक्लजी इस निराशा और उदासी का कारण तलाशते हुए कहते हैं देश में विदेशियों का शासन और मुस्लिम के आक्रमणों से यहाँ की जनता पीड़ित और शोषित होती रही। इसलिए अपने 'पौरुष' से हताश होकर जनता ने भक्ति का मार्ग अपनाया। राम और कृष्ण के भक्ति में पूरा भक्ति काल डुब गया। इन दोनों चरित्रों ने हमेशा अत्याचार का दमन किया है और लोक धर्म का पालन किया है। इसी के चलते कम से कम आम जनता में चेतना की वृद्धि तो हुई और उसी आम लोक से कबीर और रैदास जैसे समाज सुधारक भी उत्पन्न हुए। जो लोगों के बीच रह कर मनुष्यता का पाठ पढ़ा गये।

शुक्लजी की इस स्थापना का खंडन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया था। द्विवेदी जी के अनुसार- "इस्लाम जैसे सुसंगठित धार्मिक और सामाजिक मतवाद से इस देश का कभी पाला नहीं पड़ा था, इसलिए नवागत समाज की राजनीतिक,

धार्मिक और सामाजिक गतिविधि इस देश के ऐतिहासिक का सारा ध्यान खींच लेती है। यह बात स्वाभाविक तो है, पर उचित नहीं है। दुर्भाग्यवश, हिंदी-साहित्य के अध्ययन और लोक-चक्षु-गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिंदी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इसप्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते है- एक यह कि हिंदी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की संपत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान-पतन के साथ अन्गांगि-भाव से सम्बद्ध है, और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो, तो भी वह एक निरंतर पतनशील जाति की चिंताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आपमें कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ और अगर ये बातें मान भी ली जाएँ तो भी यह कहने का साहस करता हूँ कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्षों तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसंधान के लिए केवल अनुपेक्षणीय ही नहीं, बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा करके मैं इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ, लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"[4] आदिकाल की साहित्यिक सामग्री के विश्लेषण में धार्मिक साहित्य की प्राप्ति के बावजूद भक्तिकाल के विश्लेषण में यदि शुक्ल जी इस्लाम के आगमन को ही एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि वे इस्लाम के आक्रमण को "भक्ति की भाव धारा के उमड़ने का" मूल कारण मानते हैं। बल्कि शुक्लजी भारतीय जन-जीवन की विश्रृंखलता देख रहे थे। इस सन्दर्भ में दिवेद्वी जी का एक और मत उल्लेखनीय है- "यह बात अत्यंत उपहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत के मंदिर तोड़ रहे थे तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान् की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर वह प्रकट हुई दक्षिण में।"[5] जैसा कि ऊपर ही यह स्पष्ट किया गया है कि शुक्ल जी "भक्ति की भावधारा के उमड़ने का" मूल कारण भारतीय जन-जीवन की

विश्रृंखलता देख रहे थे। उदाहरण के लिए सिद्धों, नाथों, योगियों और तांत्रिकों ने तीर्थ, व्रत, ग्रन्थ उपवास आदि का खंडन करके किसी ने उसे पिंड में ही ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा को खोजने की सलाह दी थी तो किसी ने मन्त्रों के चमत्कार का पूर्ण गान किया था। उस समय की जनता ने सबको सुना और सबका पालन भी किया, लेकिन उसने देखा कि पूरा का पूरा समाज बेड़ियों में जकड़ता चला जा रहा है। उनकी आँखों के सामने ही मंदिर टूट रहे हैं, मठ ढहाए जा रहे हैं, योगी खदेड़े जा रहे हैं और कोई भी साधन काम नहीं आ रहे हैं। पूरे समाज को संचालित करने वाला कोई मूल तत्व नहीं रह गया है, तब उसका ध्यान भक्ति की ओर केन्द्रित हो जाना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस हताशा में इस निराशा में भगवान् की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त उनके पास दूसरा कोई रास्ता भी नहीं था। तत्कालीन समाज की अपेक्षा का दबाव ही वह मूल कारण है, जिससे प्रेरित होकर शुक्ल जी ने भक्ति की सामाजिक भूमिका को विशेष आदर देते हैं। इतना सब होने के बावजूद शुक्ल जी जब इस्लाम के आगमन को महत्वपूर्ण मानते है तो इसका कुछ अर्थ तो होना ही चाहिए। इसका अर्थ यह है कि शुक्ल जी इस्लाम के आगमन को, भक्ति के प्रवाह के उमड़ने का "बाह्य गौण कारण" मानते हैं। यहाँ एक बात और उल्लेखनीय है कि आदिकाल में भी धार्मिक साहित्य तो था ही। किन्तु इस्लाम ने जब परिस्थितियों को बदल दिया तो फिर वीर-काव्य से प्रवृत्ति हट गयी और मन धार्मिक साहित्य पर ही जा टिका। आदिकाल में धार्मिक साहित्य की धारा प्रमुख नहीं थी, लेकिन इधर (भक्तिकाल) उसी की प्रमुखता हो गयी। स्पष्ट है कि वीरगाथाओं के निर्माण में इस्लाम द्वारा उत्पन्न नवीन परिस्थिति ही थी। जब राजा युद्ध करने जाते थे तो उनके दरबारी कवि उनकी वीरता का बढ़ा-चढ़ा कर गान कर रहे थे। जब राजाओं की परिस्थिति पराजय में बदल गयी तो वीरगाथाएँ कम होते-होते लुप्त हो गयीं और आदिकाल की धार्मिक काव्य धारा भक्तिकाल की धार्मिक काव्य धारा के रूप में फूट पड़ी। शुक्लजी का यही कहना है कि ईश्वर के अलावा और कहीं आश्रय-प्राप्ति की संभावना नहीं थी। उनका यह वक्तव्य न तो उपहासास्पद है और न भारतीय चिन्ताधारा के स्वाभाविक विकास से अपरिचित होने के कारण ही है।

शुक्लजी के साहित्य के ऊपर प्राय: यह आरोप लगाया जाता है कि भक्तिकाल के प्रधान चार कवियों में से तीन प्रधान कवियों पर शुक्ल जी ने विस्तृत समीक्षाएँ लिखी हैं। भक्तिकाल में कबीर उनसे छूट गये। लेकिन मेरा मानना है कि अपने इतिहास-ग्रन्थ में शुक्ल जी ने ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रधान कवि कबीर को ही माना है। तभी तो शुक्ल जी ने अपने इतिहास में कबीर के "भक्ति-भावना" के संदर्भ में मूल्यांकन करते हुए लिखा है- "इसमें कोई संदेह नहीं कि कबीर ने ठीक मौके पर जनता के उस बड़े भाग को सँभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव और भक्तिभाव से शून्य और शुष्क पड़ता जा रहा था। उनके द्वारा यह बहुत ही आवश्यक कार्य हुआ। इसके साथ ही मनुष्यत्व की सामान्य भावना को आगे करके निम्न श्रेणी की जनता में उन्होंने आत्मगौरव का भाव जगाया और भक्ति के ऊँचे से ऊँचे सोपान की ओर बढ़ने के लिए बढ़ावा दिया।"[6] शुक्लजी ने भक्ति काल की समस्त काव्यधाराओं का पूर्ण आकलन एवं मूल्यांकन किया है। निर्गुण काव्यधारा ने जातिहीन, वर्गहीन, कर्मकाण्डहीन, आडम्बरहीन भक्ति का प्रचार करके समाज के पिछड़े वर्ग के एक बहुत बड़े हिस्से को संभाल लिया था, शुक्लजी ने इसके लिए कबीर की बड़ी सराहना की है। संक्षेप में कह सकते है कि कबीर यदि उनसे छूट गये तो उनका दोष न माना जाये। अपने इतिहास-ग्रन्थ में उन्होंने कबीर को भक्तिकाल के प्रमुख कवियों में माना है। उनकी यह मान्यता आज भी कायम है। यहाँ पर एक बात की ओर ध्यान दिला देना आवश्यक प्रतीत होता है। शुक्लजी के अनुसार- "भक्ति के उत्थान-काल के भीतर हिन्दी भाषा की कुछ विस्तृत रचना पहले पहल कबीर ही की मिलती है अतः पहले निर्गुण मत के संतों का उल्लेख उचित ठहरता है।"[7] कहने का आशय यह है कि साहित्य में हिन्दी भाषा में लिखी गयी रचना सबसे पहले कबीर के यहाँ ही पायी जाती है। इस तथ्य की ओर ध्यान सर्वप्रथम शुक्ल जी ने ही दिया। यही नहीं कबीर की प्रतिभा और उनकी व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातों के लिए आगे लिखते है- "यद्यपि वे पढ़े-लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं।"[8] कहने का अर्थ यह है कि शुक्ल जी के यहाँ कबीर के प्रति सम्मान-भाव था। कबीर के व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण प्रतिभा का पहले पहल जिक्र शुक्ल

जी ने ही किया। शुक्लजी साहित्य को लोकमंगल की दृष्टि से देखते है। वे मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्ध को रेखांकित करते है। जहाँ उन्हें रागात्मक सम्बन्ध दिखाई देता है वहाँ स्वीकार करते है और जहाँ दिखाई नहीं देता वहाँ वे स्वीकार नहीं करते। उदाहरण के लिए- "कबीर ने अपनी झाड़-फटकार के द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ाने वाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं। मनुष्य-मनुष्य के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ।"[9] यही वो बातें है जिससे रामचंद्र शुक्ल अन्य लेखकों से अलग है। उन्होंने उपलब्ध सामग्री के द्वारा ही कबीर का मूल्यांकन किया। हो सकता है कि मैं गलत भी हो सकता हूँ। लेकिन मेरा यह मानना है कि किसी कवि पर अधिक पृष्ठों में लिखने से वह कवि बड़ा नहीं होता बल्कि वह कितनी जगहों पर कितनी बार याद किया गया यह महत्वपूर्ण है। इस हिसाब से शुक्ल जी ने अपने इतिहास-ग्रन्थ में सबसे ज्यादा भारतेंदु हरिश्चंद्र को 37 बार, तुलसीदास को 35 बार और कबीरदास को 29 बार याद किया है। जो लोग ये कहते है कि शुक्ल जी ने अपने इतिहास में कबीर को उचित स्थान नहीं देते वो देख ले कि किस तरह से शुक्लजी ने कबीर को अपने इतिहास में प्रतिष्टित किया है। वहीं सूर और जायसी भी एक ही समाज के व्यक्ति थे। यह समाज ऐसा समाज था जिसमें कारीगरों, जुलाहों और किसानों में मुक्ति की आकांक्षा बढ़ रही थी। सामंतों ने जिस आवाज को दबा रखा था ये उनकी वाणी बनकर उभरी। ब्रज और अवध में प्रेम की सरस धारा फूट पड़ी। यह उनका सामंत विरोधी पक्ष है जिसे भुलाना सही नहीं। उसी प्रकार तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' लिखकर एक महत्वपूर्ण कार्य किया। शुक्ल जी रामचरित मानस में जीवन की समस्याओं का समाधान खोजते हैं। उन्हें जीवन की सब दशाओं का व्यापक वर्णन तुलसीदास में और उनके काव्य में मिलता है। इसमें कोई दोराय नहीं है कि शुक्लजी पर तुलसीदास का व्यापक प्रभाव था जिसके चलते उन्होंने साहित्य के मानदण्ड बताये हैं। शुक्लजी मानते हैं कि भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि तुलसीदास है, जिन्होंने मानस में राम के आदर्श चरित्र को उभारा न कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम का गुण गान किया है। शुक्लजी ने रामचरितमानस के

मार्फत देश में आदर्श शासन व्यवस्था का स्वप्न देखा है। संक्षेप में कहा जाए तो शुक्लजी भक्ति साहित्य को आदर्श साहित्य मानते हैं। शुक्लजी के भक्तिकाल की एक ओर विशेषता 'फुटकल रचनाएँ' है। काल विशेष के प्रमुख धारा में जो कवि फिट नहीं बैठे उनको उन्होंने इस फुटकल खाते में डाल दिया है। जैसे- केशव दास, रहीम, सेनापति, बनारसीदास आदि।

इ. रीतिकाल

रीतिकाल यानि उत्तर मध्यकाल (संवत् 1700 से 1900) के संबंध में उन्होंने जो व्याख्या की है वह किसी से छिपी नहीं है। उनके अनुसार रीति का अर्थ काव्य रीति है। इसके अंतर्गत उन्होंने लक्षण-ग्रंथों का समावेश किया है और इस तरह की रचनाओं को उन्होंने रीतिबद्ध रचनाएँ माना है। दूसरे बहुत से कवि ऐसे हुए जिन्होंने लक्षण ग्रंथ नहीं लिखे तो उन कवियों की विवेचना शुक्लजी ने अलग से किया। शुक्लजी ने रीतिकाल का विभाजन तो नहीं किया पर इसके विभाजन की संभावनाओं पर अपना मत जरूर प्रस्तुत किया। शुक्लजी रीतिकालीन काव्य के कथ्य-पक्ष से उतने संतुष्ट नहीं हैं, जितने उसके अभिव्यक्ति पक्ष से। रीतिकालीन कवियों की कला-पक्ष की विशेषताओं को उद्‌घाटित करते हुए कहते हैं- "रीति ग्रंथों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अत: उनके द्‌वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यंत प्रचुर परिणाम में प्रस्तुत हुए।"[10] शुक्लजी ने रीतिकालीन कविताओं के सामाजिक आधार को ठीक-ठीक रेखांकित किया है और दरबारी कवियों को उन्होंने चुन-चुनकर सुनायी है। उन्होंने लिखा है- "श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"[11] इस तरह हम देख सकते हैं कि, शुक्लजी ने रीतिकालीन कविता के सामंती वर्ग के अधार को स्पष्ट किया है।

अब रीतिकाल के प्रसंग में सर्वाधिक विवादास्पद समस्या है कि रीतिकाल का प्रवर्तक कौन था- केशवदास या चिंतामणी त्रिपाठी ? शुक्लजी ने केशवदास को न भक्तिकाल का कवि कहा है और न रीतिकाल का। उन्होंने जो वर्गीकरण किया उसके हिसाब से केशवदास फिट नहीं बैठते। जो कवि फिट नहीं बैठते उनके लिए शुक्लजी ने अपने इतिहास में एक अलग खाता (फुटकल रचनाएँ) खोला है। केशवदास को भी इसी खाते में जगह मिली है। केशवदास एक ऐसी सीमा रेखा के बीच के कवि हैं जिसके दोनों ओर भक्तिकाल तथा रीतिकाल का साहित्य है। केशव की आलोचना में इन्हीं दोनों कालों का विवेचन होता है। एक बात तो तय है कि केशव का आतंक उनके आचार्यत्व के कारण साहित्य जगत में व्याप्त रहा। शुक्ल जी के शब्दों में- "केशव को कविहृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता भी न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य और रचना कौशल की धाक ज़माना चाहते थे, पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था।"[12] कहने का आशय यह है कि इस नकली धाक की उपेक्षा शुक्लजी नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने केशवदास का अध्ययन किया और केशव की आलोचना केशव के इस नकली धाक से मुक्ति दिलाने के लिए की। एक आलोचक होने के नाते निर्णय देना ही पड़ता है। भक्तिकाल तथा रीतिकाल के सम्बन्ध में शुक्लजी ने जो निर्णय दिया उसमें केशव फिट नहीं बैठते। उनके अध्ययन के आधार पर केशव का दरबारी कवि के रूप में महत्व था और उसी से काव्य-जगत प्रभावित था। उदाहरण के लिए- "रामचंद्रिका के लम्बे-चौड़े वर्णनों को देखने से स्पष्ट लक्षित होता है कि केशव की दृष्टि जीवन के गंभीर और मार्मिक पक्ष पर न थी। उनका मन राजसी ठाट-बाट तैयारी, नगरों की सजावट, चहल-पहल आदि के वर्णन में ही विशेषतः लगता है।"[13]केशवदास की आलोचना के प्रसंग में शुक्ल जी ने रीतिकाव्य के सामंतवादी वर्ग-आधार पर सफाई से विचार किया है। वे बतलाते है कि किस प्रकार केशव के काव्य का सम्बन्ध दरबारी वातावरण से है। उनकी दृष्टि 'जीवन के गंभीर और मार्मिक पक्ष पर न थी।' इसका कारण शुक्ल जी दरबारी वातावरण ही बतलाते हैं। केशव का मन राजसी ठाट-बाट तैयारी, नगरों की सजावट, चहल-पहल

आदि के वर्णन में ही विशेषतः लगता है। इसलिए केशवदास रामकथा के वास्तविक मार्मिक स्थलों की पहचान नहीं कर सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि शुक्ल जी सामंती काव्य का विरोध करते थे। चूँकि केशव के काव्य में दरबारी जीवन के पहलू नजर आते है इसलिए शुक्ल जी ने केशवदास का विरोध किया।

प्रवर्तक की समस्या को हल करते हुए लिखते हैं कि- "इसमें संदेह नहीं कि काव्यरीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। पर हिन्दी में रीतिग्रंथों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः 50 वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।"[14] शुक्लजी भले ही काव्यरीति के पहले पहल प्रयोग के लिए केशव को चुना। किन्तु रीतिग्रंथों की परम्परा के लिए वो केशव को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार- "हिन्दी रीतिग्रंथों की परम्परा चिंतामणी त्रिपाठी से चली, अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए।"[15] इस प्रकार केशव की रीतियुगीन प्रभुता को स्वीकार करते हुए भी यदि शुक्लजी ने चिंतामणि से रीति-परम्परा मानी तो परवर्ती इतिहासकारों तथा आलोचकों ने आँख मूँद कर उसका अनुकरण किया। यहाँ एक बात विचारणीय है कि केशव को स्वीकार करते हुए भी उनकी 'कविप्रिया' से 50 वर्ष बाद चिंतामणि से रीतिकाल का प्रारम्भ मानते हैं। इस सम्बन्ध में यह भी विचारणीय है कि क्या चिंतामणि जैसा कोई दूसरा व्यक्तित्व नहीं है जिससे रीतिकाल के प्रारम्भ को जोड़ा जा सके? कविप्रिया और चिंतामणि के बीच क्या रीतिग्रंथों का अभाव है? मैं यह समझता हूँ कि, इसके ठीक विपरीत शुक्लजी रीतिग्रंथो की परम्परा की बात करते हैं। चूँकि चिंतामणी के समय से ही रीतिग्रंथों के परिमाण में वृद्धि हुई इसलिए रीतिग्रंथों की प्रवृत्ति का परिवर्तन इसी समय घटित होता है। किसी भी नए काल के प्रारम्भ होने की एक यह व्याख्या हो सकती है। इसलिए मुझे लगता है कि शुक्लजी की यह स्थापना सही है।

ई. आधुनिक काल

आ. शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल कहा है। रीतिकाल में दरबारी जीवन एवं सामंती काव्य की रचनाएँ अधिक मात्रा में दिखायी देती हैं। यही वह समय है जिसमें साहित्य की धारा अलग एवं समाज की धारा अलग जाती हुई सी प्रतीत होती है। यही कारण है कि शुक्लजी ने रीतिकाल का विरोध किया। आखिर ये कैसे संभव है कि समाज में जो घटित हो वो साहित्य में न आए। किन्तु रीतिकाल में ऐसा कुछ भी नहीं होता इस युग में समाज की धारा अलग और साहित्य की धारा अलग ही बह रही थी।

आधुनिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अलग-अलग बहती हुई धाराओं को मोड़कर एक कर दिया। इसलिए तो शुक्लजी कहते हैं- "भारतेंदु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ फिर से लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे उन्होंने दूर किया। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिश्चंद्र ही हुए।"[16] साहित्य का मुख्य कार्य जीवन और साहित्य के बीच की दूरियों को कम करके नजदीक लाने का है। इस दूरी को कम करने में भारतेंदु का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही नहीं शुक्ल जी ने प्राचीन और नवीन के सुन्दर सामंजस्य के लिए भारतेंदु की कला को उचित ठहराया है। उदाहरण के लिए- "एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तमाल गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और मंदिरों, स्त्रीशिक्षा, समाजसुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का ही सुंदर सामंजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुर्य है।"[17] जो कार्य भक्तिकाल में निर्गुण धारा ने किया था वही कार्य आधुनिक काल में भारतेंदु ने किया। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से एक तरफ मंदिर के पुजारियों एवं टीकाधारियों पर व्यंग्य किया तो वहीं दूसरी तरफ स्त्रीशिक्षा एवं समाजसुधार आदि पर अपने मत प्रस्तुत किये। भारतेंदु को हिन्दी से बहुत लगाव था इसलिए वे इसके प्रचार के लिए अलग-अलग जगहों पर सभाएँ आयोजित करते थे। उदाहरण के लिए- "हिन्दी प्रचार के लिए बलिया में बड़ी

भारी सभा हुई थी जिसमें भारतेंदु का बड़ा मार्मिक व्याख्यान हुआ था।"[18]भारतेंदु हिंदी भाषा के प्रेमी के साथ-साथ इसके बढ़ाव के लिए प्रयासरत थे। उनके द्वारा बलिया में दिया गया व्याख्यान निश्चित रूप से महत्वपूर्ण है। भारतेंदु जी के द्वारा किया गया कार्य हिन्दी साहित्य के लिए अनमोल निधि है। शुक्ल जी इनके कार्य से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सबसे ज्यादा भारतेंदु को 37 बार याद किया है। इस काल के आरंभ में दो बातें प्रधान रूप से दिखाई देती है। पहला भाषा से संबंधित और दूसरा गद्य विधा के विकास से संबंधित है।

भाषा

आधुनिक काल में ब्रज भाषा को न जोड़ना खटकने वाली बात है। शुक्लजी के इस ऐतिहासिक निर्णय से ब्रज भाषा प्रेमियों को दु:ख हुआ। ब्रज भाषा भारतेंदु और जगन्नाथ दास रत्नाकर तक बराबर चलती रही है। पर जहाँ गद्यकाल की बात है वहाँ खड़ीबोली की प्रधानता है। उन्होंने अपने इतिहास में आधुनिक काल के प्रकरण एक में ब्रजभाषा गद्य और खड़ीबोली गद्य दोनों का इतिहास लिखा है। प्रकरण दो के अंतर्गत गद्य साहित्य का आविर्भाव है। इसी प्रकरण में 'गद्य साहित्य परंपरा का प्रथम उत्थान' है। प्रकरण तीन के अंतर्गत द्वितीय और तृतीय उत्थान इसी तरह से लिखे गये। आधुनिक काल का काव्य खण्ड भी अलग से लिखा गया है। काव्य खण्ड को भी उन्होंने अपने तरीके से विभक्त किया है जो कुछ इस तरह है – पुरानी धारा, प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान। पद्य और गद्य को अलग-अलग मानते हुए शुक्लजी ने गद्य को प्राथमिकता प्रदान किया है। उन्होंने भाषा के इतिहास का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। रामविलास शर्मा शुक्लजी के इस कार्य पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं – "शुक्लजी ने खड़ी बोली के प्रसार का जो रहस्य यहाँ प्रकट किया है, वह भाषा-विज्ञान के अनेक विशेषज्ञों के लिए अब भी रहस्य बना हुआ है। अनेक विद्वानों की समझ में नहीं आया कि अवधी, भोजपुरी, मगही आदि से खड़ी बोली का संबंध क्या है, उनकी समझ में यह नहीं आया कि बड़े शहरों की 'व्यावहारिक भाषा' खड़ी बोली हुई..... उनकी स्थापनाओं के

आधार पर ही हम हिंदी भाषाओं की जातीय एकता, उनके जातीय निर्माण और संगठन और काम में खड़ीबोली को ऐतिहासिक समझ सकते हैं। .....शुक्लजी ने दिखलाया है कि खड़ीबोली के प्रचलित रूप के आधार पर ही हिंदी गद्य का विकास हुआ। यह साबित करने के लिए उन्होंने लल्लूजी लाल से पहले के हिंदी गद्य के नमूने दिये और यह भी दिखा दिया कि वे नमूने लल्लूजी लाल के गद्य से ज्यादा साफ-सुथरी हिंदी की मिसाल थे।"[19] वस्तुत: आ. शुक्ल ने हिंदी भाषा का इतिहास लिखते समय भाषा के व्यावहारिक रूप को पहचाना और उस रूप के साथ साहित्य को जोड़ा। आधुनिक गद्य इतिहास लिखते समय गद्यकारों की भाषा पर जो विचार व्यक्त किये हैं उससे उनके भाषा ज्ञान का पता चलता है। उन्होंने हिंदी-उर्दू विवाद का विश्लेषण भाषा के रूपों को समझाने के लिए किया है। वे हिंदी के टकसाली रूप का परिचय था इसलिए जिन गद्य लेखकों ने हिंदी टकसाली रूप का प्रयोग किया, उनकी प्रशंसा की। शुक्लजी ने यह बताया है कि हिंदी का गद्य रूप ना अरबी-फारसी और न संस्कृत शव्द से और न ही अंग्रेजी भाषा के कृपा से बना है। हिंदी गद्य भाषा का आधार उन्होंने समकालीन बोलचाल की भाषा को दिया है। आ. शुक्ल हिंदी साहित्य का आरम्भ अपभ्रंश भाषा से माना है, जिसके बारे में वे कहते हैं – "प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से हिंदी साहित्य का आविर्भाव माना जा सकता है।"[20] अपभ्रंश को उन्होंने प्राकृतभास हिंदी तथा पुरानी हिंदी भी कहा है। उन्होंने हिंदी के प्राकृत रूप की रक्षा पर जोर भी दिया है। कुल मिलाकर हिंदी साहित्य के साथ जुड़े सभी बोली रूपों और भाषा रूपों पर ऐतिहासिक क्रम से विचार किया है। इस तरह से हम देख सकते हैं कि आ.शुक्ल जी ने भाषा संबंधी जो भी बात कही है वह महत्वपूर्ण है।

गद्य विधा का विकास

आधुनिक काल से पूर्व गद्य साहित्य का प्रचलन बहुत कम था। पर भारतेंदु के आने से हिंदी साहित्य में गद्य विधाओं का विकास तेजी से हुआ। आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटक विधा से हुआ। भारतेंदु युग से ही निबंध, उपन्यास, कहानी,पत्र-पत्रिकाएँ तथा समालोचना का विकास प्रारंभ हुआ। इसलिए

शुक्लजी भारतेंदु के विशेषताओं को उजागर करते हुए कहते हैं – "हिंदी साहित्य अपने पुराने रास्ते ही पड़ा था। भारतेंदु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़कर जीवन के साथ लगा दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य के बीच जो विच्छेद पड़ रहा था उसे दूर किया। हमारे साहित्य को नये-नये विषयों की ओर प्रवृत्त करने वाले हरिशचंद्र ही हुए।"[21]

शुक्लजी ने भारतेंदुकालीन लेखकों के सामान्य गुण सजीवता और जिंदादिली में पाया है।भारतेंदु मंडल के लेखकों में उन्हें चपलता, स्वच्छता और उमंग दिखायी देता है। इस युग के साहित्य की मौलिकता इस बात में थी कि, यह साहित्य जनता के लिए रचा जा रहा था न कि दरबारों और मनोरंजन के लिए। इस युग के जो साहित्य हैं वह मुख्यत: सामंत-विरोधी है। भारतेंदु अपने युग के ऐसे लेखक हैं जिन्होंने नयी विचार-धारा को अपनाया और साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया। इसलिए शुक्लजी भारतेंदु युग के नव जागरण का श्रेय अंग्रेजों को नहीं दिये। वरन् उस युग के साहित्य पर जन-जीवन का रंग देखा और उसकी मौलिकता की दाद दी। शुक्लजी यह मानते हैं कि, 'अंग्रेजी गद्य-साहित्य में जो कार्य एडिसन और स्टील ने किया था वही कार्य प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट ने हिंदी गद्य-साहित्य में किया है।'

द्विवेदी युग तक आते-आते नाटकों की धूम शिथिल पड़ गयी। पर व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के लिए हिंदी साहित्य द्विवेदी जी का सदा ऋणी रहेगा। दूसरी तरफ तिलिस्म, ऐयारी और जासूसी उपन्यासों का बोलबाला रहा। 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' के महत्व पर टिप्पणी करते हुए शुक्लजी लिखते हैं- "पर हिंदी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन खत्री का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किये और किसी ग्रंथकार ने नहीं।"[22] वहीं निबंधों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। समालोचना का वैभव अधिक दिखाई पड़ा। द्विवेदी जी ने पहले पहल विस्तृत आलोचना का रास्ता निकाला। फिर मिश्रबंधुओं ने पद्मसिंह शर्मा ने अपने ढ़ंग पर विचार प्रकट किए। वहीं सरस्वती जैसी पत्रिका के आ जाने से हिंदी साहित्य के गद्य विधाओं में

विकास परिलक्षित हुआ। छोटी-छोटी कहानियाँ सामने आने लगी। अनुदित छोड़ मौलिक कहानियों का कारवा भी प्रारम्भ हुआ। सन् 1900 में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' को वह हिंदी की पहली मौलिक कहानी मानते हैं। दूसरी ओर विचारात्मक, भावात्मक और वर्णनात्मक निबंध भी लिखे जा रहे थे।

उपन्यास और कहानी के तृतीय उत्थान में शुक्लजी ने उपन्यास की चर्चा करते हुए कहा है कि- "वर्तमान जगत में उपन्यास की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकता अनुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।"[23] शुक्लजी उपन्यास के मुकाबले कहानियों के विकास को और भी विशद और विस्तृत बताते हैं।

छायावाद :-

आ. शुक्ल छायावाद के बारे में क्या सोचते हैं यह किसी से अनभिज्ञ नहीं है। उन्होंने छायावाद को सीमित अर्थ में लिया ऐसा बहुत आलोचकों का मानना है। उन पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने छायावाद में रहस्यवाद का पुट माना है। शुरुआत में उनके छायावादी विचारों का कट्टर विरोध हुआ पर बाद में नामवर सिंह जैसे आलोचक के आने से यह विवाद बहुत हद तक कम हो गया।

शुक्लजी के छायावादी संबंधी मत कुछ इस प्रकार हैं –

1. उन्होंने छायावादी कविताओं को रहस्यवादी कविता माना है और उसके निराशावाद, अबुद्धिवाद, भाग्यवाद आदि का खण्डन किया है।
2. उनको छायावाद की कला या उसके रूप पर भी आपत्ति है। पहले वह उसे 'कला कला के लिए' सिद्धांत से प्रभावित मानते हैं और साथ ही साथ उसे पश्चिम के प्रतीकवाद का असर भी कहते हैं।
3. उन्होंने कवियों के जरूरत से ज्यादा लाक्षणिकता के प्रयोग पर प्रहार किया है। जिसका प्रमाण इस कथन से प्राप्त होता है- "छायावाद शब्द का प्रयोग

दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है...'छायावाद'शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में।"[24]

4. शुक्लजी साहित्य में रोमांटिक और स्वछंदतावाद का प्रसार चाहते जरूर थे पर अस्वाभाविक या अटपटा-सा नहीं। इसलिए वे नैसर्गिक स्वच्छंदता की माँग करते हैं।
5. वह सच्ची रोमांटिक कविता के लिए लोकगीतों को आधार बनाना जरूरी समझते थे।
6. शुक्लजी छायावाद के कल्पनाधर्मी कविताओं को यथार्थ के धरातल से वाकिफ कराना चाहते थे। समाजिक जीवन के संघर्ष से परिचित कराना चाहते थे।
7. साहित्य में नियतिवाद और दु:खवाद के प्रभाव को खत्म करना चाहते थे।
8. शुक्लजी ने छायावादी कवियों का जो मूल्यांकन किया है वह बहुत कुछ सही ठहरता है। छायावादी कवियों में वह निराला जी को सबसे बहुमुखी प्रतिभा का कवि मानते थे। निराला के संबंध में वे कहते हैं – "इसी प्रकार निरालाजी ने, जिसकी वाणी पहले से भी बहुमुखी थी, तुलसी दास के मानस विकास का बड़ा ही दिव्य और विशाल रंगीन चित्र खींचा है।"[25] उनके अनुसार वह हिंदी साहित्य की यथार्थवादी धारा के सबसे निकट थे। प्रसाद के बारे में शुक्लजी कहते हैं कि- "प्रसाद जी का ध्यान शरीर विकारों पर विशेष जमता था।"[26] पंत के संबंध में उनका कहना है कि, "छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियों में प्रकृति के साथ सीधा प्रेम संबंध पंत जी का ही दिखाई पड़ता है। प्रकृति के अत्यंत रमणीय खण्ड के बीच उनके हृदय ने रूप-रंग पकड़ा है। पल्लव, उच्छवास और आँसू में हम उस मनोरम खण्ड की प्रेमार्द स्मृति पाते हैं।"[27] वहीं महादेवी वर्मा के लिए लिखते हैं, "गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को प्राप्त हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजलप्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगिमा। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई

पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"[28] शुक्लजी ने बँगला की देखादेखी अंग्रेजी ढंग की प्रगीत पद्धति के अनुसरण के रूप में 'छायावाद' को देखा है। इसी कारण निराला को समझने में भारी भूल कर गये और निराला की कविता को अंग्रेजी ढंग की नक़ल का आरोप लगाया। उदाहरण के लिए- "जैसे और सब बातों की, वैसी ही संगीत के अँगरेजी ढंग की नक़ल पहले बंगाल में शुरू हुई। इस नए ढंग की ओर निराला जी सबसे अधिक आकर्षित हुए और अपने गीतों में उन्होंने उसका पूरा जौहर दिखाया।"[29] शुक्लजी अपनी बात संकेत के रूप में करते है। किसी कवि के लिए 'जी' शब्द का प्रयोग नहीं किया। किन्तु निराला के सम्बन्ध में 'जी' का प्रयोग व्यंग्य के रूप में किया गया है। वो बतलाना चाहते है कि किस तरह निराला जी अंग्रेजी ढंग का नक़ल करते थे। संगीत को काव्य और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने के श्रेय निराला को देते है। शुक्लजी के शब्दों में- "संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के अधिक निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला जी ने किया है।"[30] निराला को पढ़ते-पढ़ते कबीर याद आ जाते है। कबीर के सम्बन्ध में शुक्लजी ने लिखा 'प्रतिभा बड़ी प्रखर थी'। निराला के सम्बन्ध में लिखा 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा निराला जी में है'। शुक्ल जी निराला को कबीर के पर्याय के रूप में देखते है।

रामचंद्र शुक्ल के इतिहास की खामियाँ –

शुक्लजी के इतिहास के अलग-अलग पहलुओं पर विचार किया गया है। हम अनुभव करते है कि शुक्ल जी का इतिहास, इतिहास-लेखन की दृष्टि से एक सफल प्रयास है। इसमें दोष बतलाना तो आसान है किन्तु उनका निदान प्रस्तुत करना बहुत कठिन है। अतः शुक्ल जी के इतिहास की क्या-क्या खामियाँ है उसका जिक्र यहाँ गौरतलब है।

शुक्लजी के इतिहास की परिभाषा के सन्दर्भ में- "जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है

कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चितवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।"[31]इस बात को शुक्ल जी के इतिहास पढ़ने वाले पाठकों ने भी ध्यान दिया होगा कि कच्चा एवं व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करने के प्रसंग में आने वाला 'शिक्षित जन समूह' काल-विभाजन के सन्दर्भ में 'जनता' हो जाता है और आधुनिक काल के सन्दर्भ में एक बार फिर 'शिक्षित जनता' हो जाता है। शुक्लजी को 'शिक्षित जनता' की याद आधुनिक काल में ही क्यों आती है ? क्या भक्तिकाल एवं रीतिकाल में 'शिक्षित जनता' नहीं थी ? यहाँ ध्यान की बात यह है कि 'जनता' के बारे में उनकी अवधारणा स्पष्ट नहीं थी।

शुक्लजी ने सिद्धों और योगियों की रचनाओं को साहित्य कोटि में स्वीकार नहीं किया। उदाहरण के लिए- "आदिकाल के भीतर वज्रयानी सिद्धों और नाथपंथी योगियों की परंपराओं योगियों की परंपराओं का कुछ विस्तार के साथ वर्णन यह दिखाने के लिए करना पड़ा कि कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण संतमत के प्रचार के लिए किस प्रकार उन्होंने पहले से रास्ता तैयार कर दिया था। दूसरा उद्देश्य यह स्पष्ट करने का भी था कि सिद्धों और योगियों की रचनाएँ साहित्य कोटि में नहीं आतीं और योगधारा काव्य या साहित्य की कोई नयी धारा नहीं मानी जा सकती।"[32] कहने का आशय यह है कि शुक्लजी एक तरफ कबीर द्वारा प्रवर्तित निर्गुण धारा के प्रचार-प्रसार के लिए सिद्धों एवं योगियों को श्रेय देते है तो वहीं दूसरी तरफ उनकी रचनाओं को साहित्य कोटि के अंतर्गत नहीं रखते। यदि वे सिद्धों एवं योगियों की रचनाओं को साहित्य कोटि के अंतर्गत नहीं रखते फिर क्या कारण है कि उन्हें कबीर एवं निर्गुण धारा के अन्य कवियों को साहित्य कोटि के अंतर्गत रखना पड़ा ? वीरगाथा काल के सन्दर्भ में 'बीसलदेव रासो', खुसरो की पहेलियाँ' एवं 'विद्यापति पदावली' तीनों ग्रंथों को स्थान देते हैं। क्या कारण है कि अमीर खुसरो एवं विद्यापति को 'फुटकल रचनाएँ' के अंतर्गत रखना पड़ा ?

शुक्लजी ने भक्तिकाल को निर्गुण एवं सगुण दो धारा में विभक्त किया। निर्गुण धारा में प्रत्येक वर्ग के कवि को स्थान दिया गया। क्या कारण है कि सगुण धारा में केवल सवर्ण कवियों को रखना पड़ा ?

शुक्लजी ने रीतिकाल के प्रसंग में दो बातें कही हैं। उनके अनुसार- "रीतिकाल के सम्बन्ध में दो बातें और कहनी हैं। इस काल के कवियों के परिचयात्मक वृत्तों की छानबीन में मैं अधिक नहीं प्रवृत्त हुआ हूँ, क्योंकि मेरा उद्देश्य अपने साहित्य के इतिहास का एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करना था, न कि कवि कीर्तन करना। अतः कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः 'मिश्रबंधु विनोद' से ही लिए हैं।"[33] शुक्लजी 'रीतिकाल के अन्य कवि' इस काल के भीतर जितने कवि लिए हैं, उतने जरुरत से कुछ ज्यादा हैं। कहना न होगा कि इस काल के भीतर शुक्लजी ने सबसे ज्यादा 'कवि कीर्तन' किया है। आवश्यकता से अधिक कवियों को स्थान देकर इतिहास को बेकार पन्नों से बोझिल बना दिया है। शुक्लजी ने भक्तिकाल एवं रीतिकाल के कवियों का परिचय प्रायः उनकी जाति या कुल के उल्लेख से शुरू करते हैं। आधुनिक काल में रचनाकारों के नाम के साथ उनकी जाति का उल्लेख नहीं करते। क्या कारण है कि शुक्ल जी आधुनिक काल के अंतर्गत रचनाकारों की जाति एवं वंशगत पहचान को अनदेखा कर देते हैं ? क्या इसे जातिबद्ध सामंती संस्कार माना जाना चाहिए ?

निष्कर्ष रूप में यही कह सकते हैं कि अब तक जितने भी हिंदी साहित्येतिहास लिखे गये हैं उनमें शुक्ल जी के साहित्येतिहास की जगह कोई नहीं ले सकता है। सारे सीमाओं के बावजूद उनके ऐतिहासिक मानदण्डों को तोड़ना असंभव है। उनसे पहले जिन रचनाकारों ने इतिहास लिखने का प्रयास किया था वे सफल नहीं हो पाए। जिसके कारण उनको इतिहास के बदले उन्होंने पाठक वर्ग को केवल कवि वृत्त-संग्रह तथा कवि कीर्तन ही पकड़ाना पड़ा। साहित्येतिहासिक दृष्टि के अभाव के कारण उन कृतियों को वह सम्मान नहीं मिल पाया जो साहित्येतिहासिक कृतियों को मिलना चाहिए। शुक्लजी के इतिहास में साहित्य के चिंतन का इतिहास है। उनके बाद भी अनेक साहित्येतिहास लिखे गये पर वह ऐतिहासिक दृष्टि-कोण,

परंपरा का बोध, स्वाधीनता का भाव, वह स्वांत: सुखाय या वह लोक मंगल नहीं है जो शुक्लजी के इतिहास की विशेषताएँ हैं। शुक्लजी जिस वक्त यह कार्य कर रहे थे वह समय हम भारतीयों के लिए बहुत असहनीय था। गुलामी की पीड़ा, स्वाधीन होने की चाह, प्रथम विश्वयुद्ध से हताश लोगों में जीवन की किरण को बिखेरने की कोशिश में उन्होंने इस ग्रंथ का सृजन किया।

संक्षेप में कह सकते है कि शुक्लजी ने साहित्य इतिहास लेखन का एक ऐसा मानदंड प्रस्तुत किया है जो आज भी अनेक दोषों के बावजूद अपने आप में पूर्ण है।